भक्ति कालीन संत कवियों की शिक्षा एवं उसकी प्रासंगिकता

पूनम सेठी

संत साहित्य भारतीय चिंता-धारा की वह अविच्छिन्न कड़ी है, जो समूचे जन-जीवन को प्रभावित करता है और निःसंदेह उत्ताम तथा श्रेष्ठ है। संतो के विराट व्यक्तित्व की तरह संत शब्द भी वरणीय है। ''परहित द्रवै सो संत पुनीता।'' संत शब्द ऋषि शब्द का पर्यायवाची है। सत् शब्द का बहुवनांत संत शब्द सत-चित-आनंद स्वरूप ब्रह्म का प्रतीक है जो ब्रह्म चिंतन के साथ प्राणी मात्र में निज स्वरूप को देखते हुए भी मानव मात्र का हितैषी एवं कल्याण चाहने वाला है। महाभारतकार महर्षि व्यास ने इसी अर्थ में संत शब्द की व्याख्या की है:

क. संतः परःहिते विहिताभियोगाः

ख. संतः आचार लक्षणाः। श्रीमद्भागवत

ग. अस्ति ब्रह्ममेःति चेद्रवेद संतमेनं विदुर्बुधाः। कालिदास

अंग्रेजी का 'सेंट' शब्द भी इसी अर्थ को प्रकट करता है। 'सेंट' वही है जिसका आचरण अंदर बाहर से शुद्ध हो और जो यथार्थ रूप में मानवतावादी हो। नौवीं-दसवीं शतियों में प्रचलित तमिल भाषा का 'आलवार' शब्द भी संत का ही पर्यायवाची है। प्रभु भक्त बारह आलवार 'नालियेर प्रबंधम्' के चार हजार पदों का गायन सामवेद की ऋचाओं की तरह सस्वर करते थे।

संत शब्द ऐसे व्यक्ति विशेष का परिचायक है जो अपने व्यक्तित्व एवं निजत्व से ऊपर उठकर सत्यरूपी परमतत्व के साथ तद्रूप हो गया हो। भारतीय चिंतन में ऐसे अनुभव - सापेक्ष व्यक्ति का सामीप्य प्राप्त करने का ही संदेश दिया गया है। अन्यत्र 'संत' के लक्षणों का आख्यान करते हुए उसे 'निर्वैर, निष्काम, कर्त्ता, प्रभु-प्रेमी तथा विषय-वासनाओं से रहित बताया गया है। कालान्तर में संत शब्द रूढ़ हो गया और इसका प्रयोग उन सभी भक्तों के लिए होने लगा जो विट्ठल अथवा वारकारी सम्प्रदाय से सम्बन्धित थे अथवा जिनकी साधना पद्धति 'निर्गुण-भक्ति' के आधार पर प्रचलित थी। इन भक्तों में महाराष्ट्र प्रांत के ज्ञानदेव, नामदेव, त्रिलोचन, एकनाथ , तुकाराम आदि के साथ-साथ उत्तर भारत के भक्तों एवं महात्माओं : कबीर, रविदास, सधना, पीपा, गुरूनानक , दादूदयाल, पलटू आदि को भी सम्मलित किया जाने लगा। इन संतों ने मानवीय जीवन को समुचित महत्व प्रदान करके उसे आध्यात्मिक धरातल पर पुनर्निमित किया। इतना ही नहीं संत लोग सानंद जीवन यापन करते हुए जीवनमुक्त बन कर विश्वकल्याण की भावना को सर्वोपरि समझते हैं और इसी में अपने जीवन का लक्ष्य भी स्वीकार करते हैं। इनके मतों व सिद्धांतों को 'संतमत' की संज्ञा से अभिहित किया गया

है तथा इनकी शिक्षाएँ आज भी मानव-मात्र के कल्याण की दृष्टि से उतनी ही प्रासंगिक है जितनी कि उनके समय में थीं।

संत मत विश्वात्मा में विश्वास रखता है, वह विश्वधर्म है। इस वि-वधर्म की आधारशिला एके-वरवाद और हृदय की पवित्रता और मानवतावादी दृष्टिकोण पर टिकी है। संत समाज मानव को एक ऐसे विश्वव्यापी धर्म का अंगभूत स्वीकार करता है जिसमें संकीर्णता के लिए कोई स्थान नहीं है। यही कारण है कि संतों का साधना मार्ग अत्यन्त सरल है, व्यावहारिक है, परस्पर प्रेम एवं समझदारी का मार्ग हैं। भारतीय संत समाज का भारत की जनता पर ही नहीं अपितु समस्त विश्व-मानव समाज पर एक भारी उपकार है कि उन्होंने ऋषि-मुनियों और मनीशियों की सुदीर्घ दार्शनिक, सामाजिक विचारधार को अत्यंत सरल भाषा और शैली में सर्वसामान्य जनता के समक्ष रखा है और भारतीय समाज को बाहरी आक्रमणकारी शक्तियों के सबल अनुशासन तथा स्थानीय धर्मान्ध शासकों की अत्याचारपूर्ण विभेदकारी नीतियों का शिकार होने से बचाए रखा है। संत समाज की विचारधारा अत्यन्त उदार, विशाल तथा सर्वग्राही थी। उनकी विचारधार में उपनिषदों, शंकराचार्य, नाथ पंथ तथा सूफी दर्शन का यथेष्ट प्रभाव रहा है। संतों का निश्चित मत है कि जीव विशुद्ध ब्रह्मतत्व है, उनमें कोई भी भेद-भाव नहीं है। जो भेद दिखाई भी पड़ता है वह माया अथवा अविद्या के कारण है। किसी जाति, धर्म अथवा वर्ग-विशेष के कारण नहीं है। यही कारण है कि संतों ने सार्वभौमता, सर्वात्मिक भावना तथा सर्वशक्ति मान्यता का प्रतिपादन किया है।

संत किसी विशेष धर्म, सम्प्रदाय अथवा जात-पात से सम्बन्ध नहीं रखते, अपितु संत, भक्त, गुरू, पीर और योगी तो परोपकारी होते हैं, सबका हित चिंतन करने वाले, मानव-मात्र का भला चाहने वाले, आम जनता में से उठे हुए, आम -जनता के दुखः - सुख की वकालत करने वाले, आम बोलचाल की भाषा में लिखने वाले होते हैं। वास्तव में संत ही हैं जो सही अर्थों में लोक-कवि , जनता के कवि, सर्वहारा वर्ग के प्रतिनिधि और जनता के सुख-दुख के भागीदार होते हैं। वे जनता को भगवत भक्ति का प्रबल संबल देकर एक वि-वस्त आधार प्रदान करते हैं और उसे पंडे-पुजारियों व धर्म के ठेकेदारों के चंगुल से बचाकर अध्यात्म को घर-घर, आंगन और कुटी में प्रचलित करते हैं और जन-प्रतिनिधि ा के रूप में स्थापित होते हैं।

ये संत समरसता में विश्वास रखते हैं। संत समाज का मूल आदर्श ही समरसता, परोपकार एवं परस्पर सहयोग है। उनके यही आदर्श आज भी उन्हें प्रासंगिक सिद्ध करते हैं। सत्संग, प्रभु की भजन बंदगी, साधु सेवा, स्वयं हाथों से कर्म करने और चित्त उस निरंजन में लगाए रखना ही संत कवियों की वाणी का केन्द्रिय विचार है। ये अपने हाथों से किरत कमाई करने में गौरव का अनुभव करते थे। यही कारण है कि इन्होंने अपने परिश्रम से भरे संतोषी जीवन में प्रभु के लोक हितैषी रूप की ओर अधिक ध्यान दिया है। इन संत कवियों ने सेवक -सेव्य भाव से परब्रह्म प्राप्ति का मार्ग प्रशस्त किया। ये संत कवि मानवतावाद, समानतावाद, समानता, सादगी, सेवा, त्याग जैसे मूल्यों में आस्था रखते

थे और इन्हें स्थापित करने में आजीवन प्रयत्नशील रहे। और आज भी अनास्था व मूल्यहीनता की ओर उन्मुख समाज, विशेष रूप से युवा पीढ़ी को इन संत कवियों की ये शिक्षाएं पथ भ्रष्ट होने से बचा सकती हैं। मानव जीवन-मूल्यों की जो अभिव्यक्ति इनके काव्य में हुई है वह इन्हें विशिष्ट बनाती है। मूल्याश्रित जीवन-दृष्टि के कारण ही ये संत कवि धरती के अधिक निकट रहे हैं। इन्होंने जन सामान्य के सुखों-दुखों , भावों एवं विचारों को समझने एवं उन्हें सहज वाणी में प्रकट करने का सकारात्मक प्रयास किया है। भाषा की दुरूहता के कारण जो तथाकथित निम्न वर्ग दर्शन एवं भक्ति से उपेक्षित रखा गया था, उसे इन कवियों की वाणी में अपने हृदय की बात के दर्शन हुए। जन साधारण के अनुभवों, दुखों एवं विषादों को वाणी का स्वरूप देकर इन भक्त कवियों ने बहुजन समाज में एकता, भ्रातृीयता, सहानुभूति एवं एकात्मकता का भाव दृढ़ किया है। इस जीवन-दृष्टि के कारण ही संतवाणी जनमानस में अपना विलक्षण स्थान भी बना सकी है और सामाजिक एकता एवं सहयोग से एक शक्तिशाली सत्ता का केन्द्र भी रही है।

संतवाणी में धर्म, भक्ति, जगत, माया, आत्मा आदि के विषय में व्यावहारिक दृष्टि से विचार किया गया है। इसमें आवागमन व कर्मफल के सिद्धांत की बात की गयी है और अहिंसा का सिद्धांत पूर्णतया स्थापित किया गया है। ये सब जीवन मूल्य मनु-य मात्र को एक सूत्र में पिरोने वाले हैं। अहिंसावादी दर्शन ने अन्य सूक्ष्म मानव-मूल्यों को भी प्रोत्साहन दिया है जिनके कारण मानव - मानव में दिलो की दूरी कम हुई है और वे एक ही परम पिता परमात्मा के अंगभूत होने के का मान प्राप्त कर सके हैं। ये मानवीय गुण हैं- दुखः, दया, करूणा, सहानुभूति, किसी भी जीव का दिल दुखी न करना, सहनशीलता और सबसे बढ़कर सह-अस्तित्व की भावना पैदा करना। संतों की वाणी समाज-सापेक्ष सच को धारण करने वाली है, कोरे दर्शन शास्त्र की बात यह नहीं करती।

इस प्रकार संत कवियों द्वारा स्वस्थ सामाजिक व्यवस्था के लिए प्रचारित तथा स्थापित किए गए प्रमुख जीवन मूल्य हैं :

क. समानता और मानव एकता
ख. भ्रातृत्व एवं परस्पर प्रेम
ग. बुद्धि-विवेक अथवा सत्य आधारित कर्म व धर्म
घ. दोनों हाथों की किरत कमाई

ये समस्त जीवन मूल्य आज भी उतने ही प्रासंगिक हैं जितने कि उनके अपने युग में थे। आज शिक्षा के प्रचार तथा संचार साधनों की वृद्धि के कारण मानव एकता व समानता की भावना को बल मिला है, जातियों के परस्पर मेल-जोल में वृद्धि हुई है तथा वर्ण व्यवस्था की कठोरता में भी काफी कमी आई है। पर इसके बावजूद जातिवाद की समस्या समय-समय पर अत्यन्त उग्र रूप में दिखाई देती है। निःसंदेह जातिवाद भारतीयों के रक्त में इस तरह रचा हुआ है कि इसे खत्म करने के अब तक के प्रयत्न आंशिक रूप से ही सफल कहे जा सकते हैं। समाज और देश की एकता में बाधक जातिवाद और वर्ण व्यवस्था जैसी बुराइयों को दूर करने में मध्यकालीन संत कवियों की निक्षा सहायक हो सकती

है। संत कवियों द्वारा निर्दिष्ट एकता, समानता, प्यार और सद्भावना पूर्ण मार्ग सही है। संतो के समस्त सिद्धांत और उनकी समूची जीवनचर्या उनके इस एक विचार से प्रस्फुटित होती है कि जीवात्मा परमात्मा का अंश है। इस दर्शन का सामाजिक जीवन पर प्रभाव दर्शनीय है। यदि मनुष्य ईश्वर का अंग है तो सभी मुनष्य मूल रूप से समान हैं तथा उसी से उद्भूत होने के कारण परस्पर भाई-भाई हैं। अतः जातिगत भेद-भाव के आधार पर उनमें भेद करना उनमें विद्यमान ईश्वर का अपमान करना है। सब संतों की वाणी समाज के लिए हितकारी इसी स्वर से ओत-प्रोत है और यही वह गुण है जिस कारण उनकी शिक्षा आज भी उतनी ही मूल्यवान है जितनी उनके अपने समय में थी।

संत कवियों ने मानव-मानव में समानता के स्वस्थ सिद्धांत को दृढ़ करवाया। कबीरदास जी लिखते हैं-

'कबीर खड़ा बाजार में सब की मांगे खैर।
न काहू से दोस्ती न काहू से बैर।।

गुरूनानक देव जी ने एक ओर 'फक्कड़ जाति फक्कड़ नाऊ, सभना जीआ इका छाऊँ' कहकर वर्ण-व्यवस्था की भर्त्सना की है तो दूसरी ओर अपने समकालीन संतों से आगे बढ़कर स्त्री जाति के सम्मान के पक्ष में आवाज उठाते हुए लिखा :

''सौ किऊं मंदा आखीअै जित जम्मै राजान''[1]

(गुरू ग्रंथ साहिब, पृष्ठ 522)

इन उच्चादर्शो के साथ-साथ संत कवियों ने ज्ञान अथवा बुद्धि-विवेक पैदा करने की आव-यकता पर भी बल दिया। उन्होंने देखा कि जिन भ्रांतियों में जन-साधारण फंसा हुआ है और जिन अंधविश्वासों में वह जकड़ा हुआ है, उसका एकमात्र उपचार ज्ञान दीपक प्रज्वलित करना है। अतः संत समाज ने जहाँ मिथ्या विश्वासों का सीधा खंडन किया, वहाँ बुद्धि- विवेक पैदा करने की प्रेरणा भी दी। वास्तव में संत-कवियों का प्रचलित कर्मो, मजहबीं अंधविश्वासों और समाज के गलत मूल्यों का खंडन विवेकवादी दृष्टि का ही प्रतिफल था।

संत कवियों द्वारा प्रचलित और स्थापित चौथा जीवन मूल्य है- पवित्र किरत कमाई अर्थात् दोनों हाथों से परिश्रम करके जीवन का निर्वाह करना, इस दिशा में सिख गुरूओं के वचन हैं:

'घालि खाइ किछु हथहु देई। नानक राहु पछाणहि सेई।'[2]

(गुरू ग्रंथ साहिब, पृष्ठ 1245)

'उदमु करेदिआं जीऊ तूं , कमावदिआं सुख भुंच '[3]

(गुरू ग्रंथ साहिब, पृष्ठ 522)

निश्चय ही संत कवि अन्य लोगों की कमाई पर पलने वाले निष्क्रिय साधुओं और भिखारिओं अथवा सन्यासियों के व्यवहार को भला नहीं मानते थे तथा किरत कमाई करके गृहस्थ में रहते हुए "चीति निरंजनि नालि" जोड़कर रखने पर बल देते थे।

निष्कर्शतः संत कवियों द्वारा प्रदत्त सामाजिक मूल्य आज भी उतने ही प्रासंगिक हैं जितने कि पहले थे। यदि कोई वस्तु इनके मार्ग में बाधक है तो वह स्वार्थी लोगों की कुटिलताएँ हैं। उनके प्रति सावधान होने के लिए इन मूल्यों को जन-साधारण में पुनः प्रसारित करने की आवश्यकता है। इनके प्रकाश में स्वतंत्रता से सोचने की आव-यकता है। स्वस्थ मूल्यों के प्रति सजग जनता ही अनेक रूपों में भटक रहे भ्रम, मिथ्या और असत्य को रोक सकती है और गलत मूल्यों को नियंत्रण में रख सकती है।

संदर्भ

गुरू ग्रंथ साहिब, पृष्ठ 522

गुरू ग्रंथ साहिब, पृष्ठ 1245

गुरू ग्रंथ साहिब, पृष्ठ 522